महात्मा गाँधी एवं अम्बेडकर का तुलनात्मक अध्ययन (दलितोद्धार के सन्दर्भ में)

डॉ0 प्रतिमा गोंड*

अक्सर यह प्रश्न उठाया जाता है कि महात्मा गाँधी तथा डॉ0 अम्बेडकर दोनों ही सामाजिक समानता तथा सामाजिक न्याय के आधार पर दलितों की दशा सुधारने के लिए कटिबद्ध थे, फिर भी उनके बीच दूरी क्यों बनी रही? यह सच है कि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के अन्तर्गत गाँधी जी यह समझ चुके थे कि दलित जातियों की स्थिति में सुधार किये बिना स्वतन्त्रता आन्दोलन को मजबूत नहीं बनाया जा सकता, लेकिन डॉ0 अम्बेडकर को यह विश्वास नहीं था कि कुछ मामूली प्रयत्नों से दलित जातियों के साथ वास्तविक न्याय किया जा सकता है। समय–समय पर उन्होंने इस विषय पर गाँधी जी से लम्बे वार्तालाप भी किये, लेकिन उनसे वह सन्तुष्ट नहीं हो सके। इसी आधार पर उन्होंने अपनी पुस्तक 'श्री गाँधी और अछूतों की मुक्ति' में अपने विचारों को विस्तार से स्पष्ट करते हुए महात्मा गाँधी के प्रयत्नों से असहमति व्यक्त की। उन्होंने लिखा कि संसार के सभी राष्ट्रों में दासता, बेगार तथा दमन की स्थिति लगभग समाप्त हो चुकी है, लेकिन आखिर कौन सी ऐसी दशाएँ हैं, जिनके कारण भारत में अभी तक दलितों की दशाओं में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हो पाया है। उनका मानना था कि आज भी दलितों के प्रति उच्च जातियों की सोच में किसी तरह का परिवर्तन नहीं हो पाया है। आज भी दलित नागरिक सुविधाओं से वंचित हैं तथा प्रकाश की कोई ऐसी किरण नहीं दिखाई पड़ रही है, जिसके सहारे वे आगे बढ़ सकें। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान कांग्रेस के कार्यकर्ता यह समझते थे कि महात्मा गाँधी ने दलितों की दशा में सुधार करने के लिए जो प्रयत्न आरम्भ किये हैं, डॉ0 अम्बेडकर उसमें पूरा सहयोग देंगे, परन्तु वास्तव में व्यवहारिक रूप से गाँधी जी व अम्बेडकर जी के बीच दूरी बनी रही, बल्कि कुछ अवसरों पर उनके बीच कटुता भी पैदा होने के प्रमाण मिलते हैं। डॉ0 अम्बेडकर ने कांग्रेस और महात्मा गाँधी के बारे में यहाँ तक कहा कि उन्होंने दलितों के लिए मगरमच्छी आँसू ही बहाये, व्यवहार में कुछ विशेष नहीं किया। प्रचार यह किया जाता है कि दलितों की सभी समस्याएँ दूर की जा रही हैं, लेकिन जब तक अस्पृश्यता की समस्या का पूरी तरह से उन्मूलन नहीं होता तथा स्वयं उच्च जातियाँ दलित जातियों के प्रति अपना हृदय परिवर्तन नहीं करतीं, तब तक इस सम्बन्ध में किये जाने वाले किसी भी प्रत्यय का कोई अर्थ नहीं।

वैचारिकी और व्यवहारिक धरातल पर डॉ0 अम्बेडकर तथा महात्मा गाँधी के बीच का जो मतभेद था, उन्हें मुख्यतः तीन बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है–

1. महात्मा गाँधी यह मानते थे कि हिन्दू समाज के विघटन का मुख्य कारण जाति व्यवस्था है, वर्ण व्यवस्था नहीं। उनके अनुसार वर्ण व्यवस्था का आधार व्यक्ति के गुण तथा कर्म हैं। यह एक परिवर्तनशील व्यवस्था है, जिसमें व्यक्ति अपने गुणों को बदलकर अपने वर्ण को भी बदल सकता है। वह यह मानते थे कि सामाजिक स्तरीकरण एक सार्वभौमिक नियम है तथा सभी लोगों के गुण व कर्म समान न होने के कारण उनके बीच पूर्ण समानता स्थापित नहीं की जा सकती। दूसरी ओर डॉ0 अम्बेडकर का यह मानना था कि भारत में सामाजिक अन्याय तथा सामाजिक असमानता का मुख्य कारण वर्ण विभाजन है। यदि वर्ण व्यवस्था न होती तो जाति व्यवस्था विकसित ही नहीं हो पाती। इसका तात्पर्य यह है कि जब तक वर्ण विभाजन को ही समाप्त नहीं किया जाता, तब तक दलित जातियों को अमानवीय स्थिति से छुटकारा नहीं दिलाया जा सकता।
2. महात्मा गाँधी जी की एक मान्यता यह थी कि अनुवांशिक पेशे के द्वारा आजीविका उपार्जित करने से व्यक्ति को अपने व्यवसाय का विशेष ज्ञान प्राप्त होता है तथा इससे समाज में बेरोजगारी नहीं फैलती। इसके विपरीत डॉ0 अम्बेडकर का यह मानना था कि जब तक दलित

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जातियों को उनके अनुवांशिक व्यवसाय से मुक्ति नहीं मिलती, तब तक न तो उनके प्रति दूसरी जातियों के लोगों के विचारों में परिवर्तन होगा और न ही स्वयं दलित जातियाँ अपना विकास करने का अवसर प्राप्त कर सकेंगी।

3. गाँधी जी का विश्वास था कि हिन्दू सामाजिक संरचना में रहते हुए ही दलित जातियों की प्रस्थिति में सुधार किया जा सकता है। इसी कारण उन्होंने सदैव दलित जातियों के लिए पृथक् प्रतिनिधित्व देने का विरोध किया। इसके विपरीत डॉ0 अम्बेडकर यह मानते थे कि दलित जातियों के प्रति उच्च जातियों की मनोवृत्तियां इतनी भेदभावपूर्ण बन चुकी हैं कि जब तक दलित जातियों को अलग प्रतिनिधित्व नहीं मिलता, तब तक उनकी शक्ति में वृद्धि होना सम्भव नहीं है। स्वतन्त्रता के दौरान डॉ0 अम्बेडकर कभी भी कांग्रेस तथा महात्मा गाँधी द्वारा दलितों की प्रस्थिति में सुधार करने के प्रश्न पर संतुष्ट नहीं रहे। एक बार डॉ0 अम्बेडकर ने तो यह तक कह दिया था कि उन संगठनों और व्यक्तियों को अछूतों का पक्ष रखने का कोई अधिकार नहीं है, जो स्वयं अछूत नहीं हैं। कांग्रेस के बारे में उनका विचार था कि कांग्रेस ने कभी भी अछूतों की निर्योग्यताओं को दूर करने में ईमानदारी का परिचय नहीं दिया है। यही कारण है कि डॉ0 अम्बेडकर ने सदैव इस बात पर बल दिया कि ब्रिटिश शासन द्वारा प्रारम्भ किये गये साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के अन्तर्गत जिस प्रकार मुसलमानों, ईसाईयों और पंजाब में सिक्खों को पृथक् प्रतिनिधित्व की स्थिति प्राप्त है, उसी प्रकार दलितों को भी ऐसा ही पृथक प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए, जिसमें दलितों के प्रतिनिधि केवल दलितों द्वारा चुने जाने चाहिए। यही कारण था कि बाबा साहेब शुरू से दलितों की पृथक राजनीति पर विशेष बल दिया करते थे, इसके अलावा सन् 1930 तथा 1931 में लन्दन में होने वाले पहले और दूसरे गोलमेज सम्मेलन में उन्होंने दलितों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व पर ही सबसे अधिक बल दिया था। गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट 1919 में किये गये प्रावधान के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने 1928 में सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक कमीशन बनाकर समस्त भारतीय राजनेताओं की राय जानने के लिए भारत भेजा, जिसका विरोध लिबरल दलों तथा कांग्रेस ने किया। केवल अछूत नेताओं ने कमीशन को अपनी समस्याओं से अवगत कराने के लिए उनके साथ सहयोग किया। समस्त भारतीय राजनेताओं से विचार–विमर्श करने के लिए सरकार ने लन्दन में गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया। सम्मेलन 12 नवम्बर, 1930 को आरम्भ हुआ। कांग्रेस उस समय असहयोग आन्दोलन चलाने में व्यस्त होने के कारण सम्मेलन में भाग नहीं ले सकी। उस सम्मेलन में डॉ0 अम्बेडकर ने अछूतों से सम्बन्धित सभी समस्याएँ प्रस्तुत कीं। उस सम्मेलन में डॉ0 अम्बेडकर, सर आगा खाँ, राव बहादुर पन्नीर, सेलवम सर हेनरी, गिडने तथा सर इवर्ट की आपसी सहमति से एक अल्पसंख्यक समझौता तैयार किया गया, जिस पर केवल गाँधी जी एवं कांग्रेस की सहमति बाकी थी।[1]

दूसरे गोलमेज सम्मेलन में उस अल्पसंख्यक समझौते पर पुनः विचार का प्रस्ताव रखा गया। गाँधी जी उस समय समझौते में अछूतों के पृथक राजनैतिक अधिकारों का प्राविधान देखकर असन्तुष्ट व नाराज हो गये, जिसके कारण ऐसी स्थिति पैदा हो गयी कि पंच निर्णय के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प ही न रहा। सर्वसम्मति से ब्रिटिश प्रधानमन्त्री को पंच निर्णायक चुना गया। प्रस्ताव पर डॉ0 अम्बेडकर के अतिरिक्त अन्य सभी नेताओं ने हस्ताक्षर किया, गाँधी जी ने भी अपनी सहमति के हस्ताक्षर किये।[2]

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ने 17 अगस्त, 1932 को अपने पंचनिर्णय की घोषणा की, जिसमें भारत के सात करोड़ अछूतों के सर्वांगीण विकास एवं उत्थान को ध्यान में रखते हुए उनके लिए विशेष अधिकारों तथा पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गयी थी, इसके साथ ही मुस्लिम, सिक्खों, एंग्लो इंडियन, इंडियन क्रिश्चियन तथा अन्य वर्गों के लिए भी पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गयी थी। गाँधी जी ने किसी भी सम्प्रदाय के पृथक निर्वाचन की व्यवस्था का विरोध नहीं किया। उन्होंने केवल अछूतों को दिये गये विशेष अधिकारों और उनके पृथक निर्वाचन के विरोध में यरवदा जेल, जहाँ वे पहले से ही बन्द थे, 20 सितम्बर, 1932 से आमरण अनशन की घोषणा कर दी। उस समय शायद गाँधी जी यह भूल गये थे कि ब्रिटिश प्रधानमन्त्री को पंच निर्णायक बनाने के प्रस्ताव पर गाँधीजी ने ही अपनी सहमति के हस्ताक्षर

किये थे। अतः वह नैतिकता के आधार पर पंच निर्णाय के फैसले को मानने के लिए बाध्य थे। गाँधी जी द्वारा जेल में ही आमरण अनशन की घोषणा से भारत की धरती पर राजनैतिक भूचाल आ गया। डॉ0 अम्बेडकर ने 19 सितम्बर, 1932 को गाँधी जी से आमरण अनशन न करने की अपील करते हुए कहा था कि– "यदि मुसलमानों और सिक्खों को पृथक निर्वाचन मिल जाने से राष्ट्र को खंडित होने का खतरा नहीं है तो दलित वर्गों को पृथक निर्वाचन दे देने से हिन्दू समाज को खंडित होने का खतरा कैसे हो सकता है? अछूतों के प्रति गाँधीजी की शत्रु भावना मेरी समझ में नहीं आती कि जो वह समझते हैं कि दलित वर्ग पृथक् निर्वाचन से सवर्ण हिन्दू समाज से अलग हो जायेंगे। हिन्दू महासभा के अध्यक्ष डॉ0 बी0एस0 मुन्जे, जो हिन्दू मामलों के पक्ष में वकालत करने में बहुत तेज एवं प्रमुख व्यक्ति थे, उन्होंने अपने भाषणों में इस बात पर जोर दिया है कि पंच निर्णय (कम्यूनल एवार्ड) दलित वर्गों को हिन्दू समाज से पृथक नहीं करता, बल्कि इस असहाय वर्ग के विकास के लिए कुछ सकारात्मक परिस्थितियों का निर्माण कर रहा है। अब तो गाँधी जी को भी इस व्याख्या से संतोष कर लेना चाहिए।[3]

इस सन्दर्भ में आगे आमरण अनशन वापस लेने की अपील करते हुए डॉ0 साहेब कहते हैं कि मैं दलित वर्गों की सुरक्षा के लिए स्थायी रूप से सुदृढ़ गारण्टी चाहता हूँ। यदि गाँधी जी कम्यूनल एवार्ड में कोई ऐसा परिवर्तन करना चाहते हैं तो वह अपने प्रस्ताव को सामने लायें और सिद्ध करें कि उनके द्वारा लाये गये प्रस्ताव कम्यूनल एवार्ड द्वारा दी गयी गारण्टी की अपेक्षा अधिक कारगर है। हमारी पथक निर्वाचन की मांग हिन्दू समाज को खंडित करने की नहीं, बल्कि हमारी दलित, असहाय गरीब जनता सवर्ण हिन्दुओं की दया पर निर्भर न रहकर उसे स्वावलम्बी और सशक्त समाज बनाने की है। गाँधी जी के सामने हमारा मानवीय अधिकार पाने का दावा है। मुझे आशा है कि गाँधी जी मुझे इस बात के लिए विवश नहीं करेंगे कि मैं उनके जीवन तथा अपने निःसहाय दलित वर्गों के अधिकार में से किसी एक को चुनूँ, क्योंकि भविष्य में अपने लोगों की आने वाली पीढ़ियों को हथकड़ी और बेड़ी में जकड़कर पड़े रहने के लिए मैं कभी नहीं कहूँगा।[4]

डॉ0 अम्बेडकर की उपरोक्त अपील का गाँधी जी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने 20 सितम्बर, 1932 को दोपहर 12 बजे से आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। डॉ0 अम्बेडकर को जान से मार डालने की धमकी भरे पत्र और अश्लीलता से भरे पत्र आने लगे। डॉ0 अम्बेडकर के समक्ष एक तरफ गाँधी जी के प्राणों की रक्षा थी तो दूसरी ओर दलित वर्गों के हितों की सुरक्षा का प्रश्न था। भावी संघर्ष से समाज को बचाने तथा मानवता को ध्यान में रखते हुए डॉ0 अम्बेडकर ने गाँधी जी के प्राणों की रक्षा करना ज्यादा आवश्यक एवं श्रेयस्कर समझा।

कवि मिल्टन के अनुसार– "कहना और कहकर सीधे मुकरना झूठ ही नहीं, बल्कि सबसे बढ़कर कायरता है।" कांग्रेसी नेताओं की ठीक यही मनोदशा बन गयी, जो डॉ0 अम्बेडकर के लिए हिन्दू धर्म से कुंठा का कारण बनी, जिससे विवश होकर योवला में 13 अक्टूबर, 1935 को दस हजार जनसमूह के मध्य में डॉ0 अम्बेडकर को यह घोषणा करनी पड़ी कि "दुर्भाग्य से मैं हिन्दू अछूत समाज में पैदा हुआ हूँ, यह मेरे वश की बात नहीं थी। लेकिन यह मेरे वश की बात है कि मैं हिन्दू रहकर नहीं मरूँगा। मैं धर्म परिवर्तन अवश्य करूँगा।"[5] डॉ0 अम्बेडकर ने अपनी यह भीम प्रतिज्ञा 1956 को नागपुर दीक्षा भूमि में बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर पूर्ण की और दूसरे दिन ही पाँच लाख से अधिक जनसमूह को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। कहा जाता है कि गाँधी जी ने अपने जीवन में इक्कीस बार अनशन किया, जिनमें उपरोक्त अनशन अप्रतिम और ऐतिहासिक महत्व का रहा है। उन्होंने अस्पृश्यता निवारण अछूतों के लिए भले ही कुछ कहा हो, सोचा हो, परन्तु अस्पृश्यता समाप्त करने तथा पूना पैक्ट का ईमानदारी से कांग्रेसियों द्वारा पालन कराने अथवा देश को स्वतन्त्रता दिलाने तथा देश को खण्डित होने से बचाने के लिए उपरोक्त जैसा आमरण अनशन कभी नहीं किया।[6]

इसी के साथ ही उस समय दूसरा ज्वलन्त मुद्दा भी समकालीन समाज को पूरी तरह से कुप्रभावित कर रहा ता। वह था साम्प्रदायिकता। साम्प्रदायिक प्रश्न वह चट्टान थी, जिससे टकरा कर इंडियन राउंड टेबुल कांफ्रेंस की मंशा चकनाचूर हो गयी। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक जातियों के बीच समझौता कराने में गोलमेज सभा पूर्णतया असफल रही। जहाँ तक अन्य अल्पसंख्यक समुदायों का प्रश्न है, साम्प्रदायिक निर्णय उनके द्वारा और इस प्रकार पृथकता का भय समाप्त हो गया। परन्तु जहाँ तक

अस्पृश्य जातियों का प्रश्न था, वह समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। कुछ नकारात्मक परिस्थितियाँ तथा महात्मा गाँधी की कुछ नीतियाँ एवं वार्तालाप यह प्रतीत कराने लगे, जैसे कोई भी अस्पृश्यों के घाव को भरने नहीं देना चाहता है। गोलमेज सभा से भारत वापस आने के बाद गाँधी जी को ब्रिटिश सरकार ने जेल में तो बन्द कर दिया था, परन्तु यरवदा जेल में भी महात्मा गाँधी ब्रिटिश सरकार द्वारा अछूतों को विशेष प्रतिनिधित्व दिये जाने के अधिकारों को रोकना नहीं भूले। कुछ इस प्रकार के वक्तव्य के भी प्रमाण मिलते हैं कि वे भयभीत थे कि ब्रिटिश सरकार के गोलमेज सभा में अपनी जान की बाजी लगाकर विरोध करने की जो धमकी गाँधी जी ने दी है, कहीं सरकार उसकी परवाह न कर उन्हें उनके अधिकार न दे दे। इससे उनकी छवि अथवा सम्मान को ठेस पहुँचती। शायद इसी भय के परिणाम स्वरूप गाँधी जी ने उस ब्रिटिश सरकार को, जिसने उन्हें कारागार में डाल रखा था, दूरसंचार द्वारा तुरन्त सरकार से सम्पर्क स्थापित किया। इसी सन्दर्भ में 11 मार्च, 1932 को गाँधी जी ने तत्कालीन भारत सचिव सैमुअल को सम्बोधित करते हुए निम्न प्रकार से पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने अस्पृश्यों की माँगों को अपने द्वारा विरोध करने की बात दोहरायी, वह पत्र इस प्रकार था–

प्रिय सर सैमुअल,

यह बात शायद आपको याद होगी कि गोलमेज सभा में अपने भाषण के अन्त में उस समय जब अल्पसंख्यकों का दावा पेश किया गया था तो मैंने कहा था कि दलित वर्गों के लिए यदि पृथक निर्वाचन की स्वीकृति दी जाती है तो उसका विरोध मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर करूँगा। मैंने इसे किसी भावावेश और जोश में नहीं कही और न अलंकारिक भाषा के रूप में ही, वह मेरा गम्भीर व्याख्यान था। उस व्याख्यान को ध्यान में रखते हुए मैंने आशा की थी कि भारत वापस पहुँचते ही दलित वर्गों को स्वीकार किये जाने वाले पृथक निर्वाचन के विरुद्ध में सामान्य जनता में अपने विचार उजागर करूँगा। परन्तु ऐसा नहीं हो पाया है।

जेल में जिन समाचार पत्रों को पढ़ने की मुझे अनुमति मिली है, उनके पढ़ने से हमें मालूम होता है कि किसी भी समय सरकार अपने फैसले की घोषणा कर सकती है। पहले ही मैंने यह विचार कर लिया था कि यदि फैसले में दलित वर्गों के पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की जाती है तो मैं ऐसा कदम उठाऊँगा, जिससे मेरा संकल्प पूरा हो सके। परन्तु ब्रिटिश सरकार को पहले नोटिस दिये बिना मैं ऐसा कुछ करूँ, यह सर्वथा अनुचित होगा। स्वाभाविक है कि वे मेरे उस कथन को कोई महत्व नहीं देंगे। इस सम्बन्ध में गाँधी जी ने अपने पत्र में लिखा कि मुझे केवल दलित वर्गों को पृथक निर्वाचन दिये जाने पर एतराज है, इसके अतिरिक्त अन्य एतराजों को मैं नहीं दोहराना चाहता। मैं अपने को उनमें से एक समझता हूँ। दूसरे अल्पसंख्यकों की अपेक्षा दलित वर्गों की स्थिति पूर्णतया भिन्न प्रकार की है। मैं विधायिकों में उनके प्रतिनिधित्व के विरुद्ध नहीं हूँ। मैं इस पक्ष में हूँ कि उनके अशिक्षित एवं निर्धन होते हुए भी वयस्क मताधिकार के आधार पर मतदान सूची में पंजीकृत करके पुरुषों तथा स्त्रियों को भले ही मताधिकार प्रदान किया जाये, परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि पृथक निर्वाचन उनके लिए तथा हिन्दू धर्म के लिए हानिकारक है, राजनीतिक दृष्टि से चाहे कुछ भी हो। पृथक निर्वाचन से अछूतों को जो हानि पहुँचेगी, उसके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वे सवर्ण हिन्दुओं में बँटे हुए हैं और वे उन पर कितना निर्भर करते हैं। जहाँ तक हिन्दु धर्म का सम्बन्ध है, पृथक निर्वाचन उनके लिए जीवित पशु को चीरफाड़ कर उसे अलग–अलग कर देने के समान होगा।[7]

मैं महसूस करता हूँ कि सवर्ण हिन्दुओं ने सदियों से जितना उन्हें पतित कर रखा है, कितना भी पश्चात्ताप किया जाये, उसकी क्षतिपूर्ति नहीं की जा सकती है।[8]

आगे गाँधी जी कहते हैं– मैं जानता हूँ कि पृथक निर्वाचन न तो पाश्चात्य का स्थान ले सकता है और न उनकी पतनावस्था को समाप्त करने करने की युक्ति बन सकता है, जिससे वे पीड़ित हैं। इसलिए मैं सम्मानपूर्वक ब्रिटिश सरकार को सूचित करना चाहता हूँ कि दलित वर्गों के लिए पृथक निर्वाचन की स्वीकृति दिये जाने पर मैं आमरण अनशन करूँगा।.....

यह चेतावनी देकर गाँधी जी इस विषय पर चुप होकर बैठ गये और यह सोचकर कि उन्होंने ब्रिटिश सरकार को जो आमरण अनशन की धमकी दी है, वह पर्याप्त है और इससे अछूतों को मिलने वाले विशेष प्रतिनिधित्व का अधिकार उन्हें मिलने से रुक जायेगा। जब दिनांक 17 अगस्त, 1932 को

सरकार ने कम्यूनल एवार्ड की घोषणा की तब गाँधी जी को महसूस हुआ कि उनकी धमकी निष्फल हो गयी, तब उन्होंने पहले तो कम्यूनल एवार्ड के प्रावधानों का पुनः निरीक्षण कराने का प्रयत्न किया। तदनुसार 20 सितम्बर, 1932 को गाँधीजी ने अपना आमरण अनशन अछूतों को पृथक निर्वाचन देने के विरुद्ध आरम्भ किया।

गाँधीजी के आमरण अनशन ने एक बड़ी समस्या यह खड़ी कर दी कि उनके प्राणों की रक्षा कैसे की जाये। उनके प्राणों की रक्षा का उपाय केवल कम्यूनल एवार्ड में कुछ परिवर्तन करके किया जा सकता है, जिससे गाँधी जी की भावनाओं को ठेस न लगे। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ने पहले ही यह स्पष्ट कर दिया था कि ब्रिटिश मंत्रिमण्डल उस एवार्ड को वापस नहीं लेगा और न ही उसमें कोई परिवर्तन करेगा, परन्तु सवर्ण हिन्दुओं और अस्पृश्य वर्गों के मध्य निकाले गये किसी सिद्धान्त के अनुसार संशोधन करने के लिए सहमत हो सकता है। डॉ0 अम्बेडकर आगे कहते हैं कि चूँकि मैंने गोलमेज सभा में अछूतों का प्रतिनिधित्व किया था, इसलिए कोई भी संशोधन तब तक वैध नहीं हो सकता, जब तक उस पर मेरी सहमति न हो। उस दिन भारत के अछूतों का प्रतिनिधि होने के कारण मेरी स्थिति पर प्रश्न चिन्ह ही नहीं लगा था, वरन् सबकी निगाहें मेरी ओर लगी हुई थीं कि वह मनुष्य है अथवा चाण्डाल। गाँधी जी का जीवन– जैसा कि गाँधी जी ने स्वयं कहा है, मेरे हाथ में था।

इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहं कि उस समय मेरी स्थिति ऐसी संकटपूर्ण और विषम हो गयी थी कि वैसी स्थिति में शायद ही कभी कोई पड़ा हो। बड़ी घबड़ाहट की स्थिति थी। एक ओर गाँधी जी के प्राणों की रक्षा करने का मेरा मानवीय कर्तव्य हाथ जोड़े खड़ा था तो दूसरी ओर करोड़ों अछूतों को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री द्वारा दिये गये राजनैतिक अधिकारों की सुरक्षा की समस्या मेरे सामने थी। मैंने मानवता की पुकार का वरण किया और गाँधीजी के प्राणों की रक्षा इस बात पर सहमत होकर की कि कम्यूनल एवार्ड में वैसे परिवर्तन कर दिया जायें, जिनसे वह (गाँधीजी) सन्तुष्ट हों। वही समझौता 'पूना–पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है।[9]

पूना–पैक्ट की शर्तें

सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में से दलित वर्गों के लिए सीटें सुरक्षित होंगी। प्रान्तीय विधान सभाओं में सीटें निम्न प्रकार से सुरक्षित की जायेंगी।

प्रांत	सीटें
मद्रास	30
बम्बई–सिंध के साथ	15
पंजाब	08
बिहार और उड़ीसा	18
सेंट्रल प्राविंसेज (मध्य प्रदेश)	20
आसाम	07
बंगाल	30
यूनाइटेड प्राविंसेज (उत्तर प्रदेश)	20
योग	**148**

बिहार और उड़ीसा में सीटों का तालमेल करके कुल सीटों की संख्या 148 से बढ़ाकर 151 कर दी गयी थी।

गाँधी जी के कुछ विशिष्ट अनुयायियों के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति यह मानने को तैयार नहीं था कि उनके आमरण अनशन का कोई नैतिक औचित्य है और गाँधी जी को अछूतों की दया पर पुनः जीवनदान मिले तो क्या वह उनके कृतज्ञ होंगे? कदापि नहीं।

कुछ भी हो, प्रश्न यह है कि पूना–पैक्ट से अस्पृश्यों को क्या मिला? यह समझने के लिए विधान सभाओं में हुए चुनाव परिणामों के पुनः निरीक्षण से बात समझ में आ जायेगी। गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट, 1 अप्रैल, 1937 से लागू हुआ। फरवरी, 1937 में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के प्रावधानों के अनुसार प्रान्तीय विधान सभाओं के नये चुनाव हुए। फरवरी, 1937 में दलित वर्गों के चुनाव पूना–पैक्ट

की शर्तों के अनुसार हुए। विभिन्न प्रान्तीय विधान सभाओं में अछूतों के लिए सुरक्षित सीटों के चुनाव परिणामों का विश्लेषण निम्न प्रकार है–

प्रांत	अस्पृश्यों के लिए कुल सुरक्षित सीटें	कुल सीटें, जिन्हें कांग्रेस ने हथिया लिया
उत्तर प्रदेश	20	16
मद्रास	30	26
बंगाल	30	06
मध्य प्रदेश	20	07
बम्बई	15	04
बिहार	15	11
पंजाब	08	00
आसाम	07	04
उड़ीसा	06	04

चुनाव परिणामों के विश्लेषण से यह कोई भी पूछ सकता है कि पूना–पैक्ट में शामिल होकर गाँधी जी की जान बचाने से अस्पृश्यों को क्या मिला और क्या पूना–पैक्ट में शामिल होने से अछूत सवर्ण हिन्दुओं के बंधुआ मजदूर नहीं हो गये हैं। इस विश्लेषण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि बहुसंख्यक दलित वर्ग के लोग कांग्रेस के टिकट पर चुने गये हैं। यह मेरा दोषारोपण है कि अस्पृश्यों को अधिकांश रूप में कांग्रेसी बनाकर चुनाव जिताया गया। इसका अर्थ यह है कि अछूतों को कांग्रेस में मिलाकर अछूत समाज को हानि पहुँचाई गई। "यदि अछूत अपनी गलतियों के प्रति सजग रहेंगे और अपने में सामाजिक क्रान्ति की भावना को बनाए रखेंगे, तभी उनका कल्याण होगा। उन्हें सवर्ण हिन्दुओं को बतला देना है कि अछूतों के लिए जो उनका क्रूर व्यवहार है, वह विपत्तिजनक है और जिन मुसीबतों से वे जीवन बिताते हैं, सवर्ण हिन्दुओं के अपराधिक कारणों से ही वे सभी मुसीबतें झेल रहे हैं।[10] डॉ0 अम्बेडकर का मानना था कि कांग्रेस के भीतर रहकर अछूतों को अपना आन्दोलन चलाना बिल्कुल असम्भव है। ऐसा करना पार्टी के अन्दर पारस्परिक कलह पैदा करना है, अतः कांग्रेस अपनी सुरक्षा में ऐसा करने की अनुमति कभी नहीं देगी।

कांग्रेस ने उन सभी कांग्रेसी अछूतों को सख्त हिदायत दी है कि वे कांग्रेस हाईकमान की स्वीकृति के बिना अपना कोई स्वतन्त्र आन्दोलन नहीं चला सकते। इसी के परिणामस्वरूप उन प्रान्तों में, जहाँ अछूतों ने अपने को कांग्रेस में शामिल किया है, अछूतों का आन्दोलन मृतप्रायः साबित हुआ है। कांग्रेसी अछूतों ने अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट करने तथा कार्य करने की स्वतन्त्रता कांग्रेस के हाथ गिरवी रख दिया है और उनके साथ बंधुआ मजदूर के रूप में कार्य कर रहे हैं। वे अपनी पसन्द का मतदान नहीं कर सकते हैं, वे जो सोचते हैं बोल नहीं सकते हैं। वे कोई प्रश्न नहीं कर सकते हैं और वे सदन में कोई बिल नहीं ला सकते हैं। वे पूणतया कांग्रेस पार्टी के नियन्त्रण में रहेंगे। वे वही कार्य करने में स्वतन्त्र हैं, जिनकी अनुज्ञा कांग्रेस कार्यकारिणी देना पसन्द करे।

अछूतों को कांग्रेस में शामिल होने से तीसरी हानि जो उठानी पड़ी, वह यह कि अछूतों को मिलने वाले वास्तविक लाभ से उन्हें बिल्कुल दूर रखा गया– इसके दो कारण हैं–

पहला कारण तो यह कि कांग्रेस मौलिक सिद्धान्त की पार्टी नहीं है। कांग्रेस पार्टी की शोहरत केवल उसके क्रान्तिकारी संगठन होने का कारण है। उसके विचार में पूर्ण स्वतन्त्रता सविनय अवज्ञा आन्दोलन और भू–राजस्व का भुगतान न करने देना जैसे सवाल जो उसने कभी उठाये थे, उनसे कांग्रेस की शोहरत बढ़ी, परन्तु बहुत से लोग यह भूल जाते हैं कि क्रांतिकारी पार्टी मौलिक सिद्धान्त की पार्टी नहीं होती है।

कांग्रेस मौलिक सिद्धान्तों वाली और आर्थिक सुधारों की पार्टी न होने के कारण यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि कांग्रेस कोई मौलिक सिद्धान्तों वाली ऐसी सामाजिक एवं आर्थिक योजनाएँ बनायेगी, जिनसे अछूत कभी अपने भाग्य को सुधारने और प्रगति करने में समर्थ हो सकेंगे। अछूतों के

लिए ऐसी कांग्रेस पार्टी में शामिल होना बिल्कुल व्यर्थ और निरर्थक है। कांग्रेस उनके लिए कुछ न कर सकेगी, बल्कि उनका वैसे ही उपयोग करेगी, जैसा अब तक करती रही है।[11] केवल एक ही ऐसी परिस्थिति है जिसे कांग्रेस विवशता का कारण समझती है और वह यह है कि जब उसे विधानसभाओं में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए अछूत प्रतिनिधियों का सहारा लेना पड़ता है, तभी अछूत इस स्थिति में होते हैं कि वे अपनी शर्ते मनवाने के लिए कांग्रेस को बाध्य कर सकते हैं। परन्तु आजकल कांग्रेस का सब जगह इतना बोलबाला (बहुमत) है कि वे विधान सभाओं के स्वयं ही मालिक हैं। उसे किसी अन्य के समर्थन की आवश्यकता नहीं है। वे अछूत जो कांग्रेस में शामिल हैं, कांग्रेस की पूँछ के अंतिम सिरे पर हैं और वह पूँछ इतनी लम्बी है कि कांग्रेस के हिलने का वहाँ तक कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता है। यही दूसरा कारण है कि अछूतों को कांग्रेस में शामिल होने से कोई लाभ नहीं है।

निःसन्देह यह प्रश्न किया जा सकता है कि यदि कांग्रेस में शामिल होने से ये दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं तो ये अछूत कांग्रेस में शामिल क्यों होते हैं ? वे कांग्रेस के विरोध में अपने चुनाव स्वतन्त्र रूप से क्यों नहीं लड़ते ? कुछ अभ्यर्थी जो कांग्रेस टिकट से चुनाव में खड़े हुए वे केवल जीवनयापन के लिए उसमें गये कि वे भी विधान सभाओं में पहुँचकर अपने लिए लाभ का कोई स्थान बना सकें। उन्हें इस बात की कोई परवाह ही नहीं कि वे किसको सीढ़ी बनाकर वहाँ पहुँचना चाहते हैं। कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी होने के कारण उन्हें यह पक्का यकीन हो जाता है कि विधान सभा तक पहुँचने का माध्यम केवल कांग्रेस है और उसमें शामिल होकर चुनाव लड़ने से सफलता अवश्य मिलेगी।

अस्पृश्य लोग कांग्रेस में क्यों शामिल हुए ? इसका सीधा–साधा उत्तर है कि पूना–पैक्ट द्वारा उत्पन्न की गयी शरारत और संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था के कारण विवश होकर वे कांग्रेस में शामिल हुए।

अछूतों के पृथक निर्वाचन के विरोध में गाँधी जी का तर्क गलत एवं राजनीतिकता से परिपूर्ण था। गाँधी जी ने पृथक निर्वाचन पर एतराज इस आधार पर किया कि उससे अछूतों पर अछूत होने का लेबल लगा ही रहेगा, परन्तु यह समझना कठिन है कि संयुक्त निर्वाचन से क्या वह लेबल समाप्त हो जायेगा? संयुक्त निर्वाचन में जो सीटें छूतों के लिए सुरक्षित हों, उसके लाभ के भी दावेदार अछूतों के लिए यह आवश्यक होगा कि वो अपने ही लोगों पर अछूत होने का लेवल लगाये। इस प्रकार गाँधी जी जैसा कि पृथक निर्वाचन में अछूतों के अछूत बने रहने के लेबिल की बात करते हैं; संयुक्त निर्वाचन में वह लेबिल बना रहेगा। इससे ऐसा लगता है कि गाँधी जी यह समझ ही नहीं पाये कि वह क्या कर रहे हैं।

गाँधी जी लिखते हैं कि– मैं डॉ0 अम्बेडकर को सर्वोत्तम सम्मान देता हूँ। उन्हें तीक्ष्ण और कठोर होना स्वभाविक है और अधिकार भी। वह हमारे सिर नहीं तोड़ देते, यह उनका आत्मसंयम है। आजकल वह अविश्वास और संदेह से इतना परिपूर्ण है कि उन्हें अविश्वास के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता। वह प्रत्येक हिन्दू को अछूतों का विरोधी समझते हैं और ऐसा समझना स्वभाविक है। आरम्भ के दिनों में दक्षिण अफ्रीका में ऐसी ही मनोदशा मेरी हो गयी थी। जहाँ पर यूरोपीयन लोग जहाँ कहीं मैं जाता वे शिकारी कुत्ते की तरह मेरे पीछे पड़ जाते। यह उनके लिए ज्वालामुखी जैसा क्रोध करना स्वभाविक है परन्तु पृथक निर्वाचन व्यवस्था जिसे उन्होंने अपना अस्त्र चुना है, सामाजिक सुधार के लिए वह अस्त्र ठीक न होगा।[12]

अंततः दोनों महापुरुषों का उद्देश्य सामाजिक समरसता अछूतोद्धार एवं देश पर आये संकट का समाधान था। दोनों को अस्पृश्य वर्गों की पीड़ा पीड़ित कर रही थी। एक की पीड़ा विदेशी थी तो दूसरे की पीड़ा देशी थी। एक बाहर अपमानित था तो दूसरा अपने ही घर में महाअपमान का दंश झेल रहा था। दोनों महापुरुषों में मात्र इतना ही अंतर था कि एक श्रेष्ठतम था तो दूसरा योग्यतम यही कारण है कि दोनों महापुरूषों में से किसी एक की प्रशंसा अथवा उन्हें श्रेष्ठतम् रूप में प्रस्तुत करने का साहस और सामर्थ किसी में नहीं है। दलितोद्धार में दोनों महापुरुषों के राजनीतिक दृष्टिकोण में अंतर था। एक का माध्यम राजनीति था तो दूसरे की धूर राजनीति किन्तु देशप्रेम व दलित समाज की पीड़ा दोनों लोगों में थी। एक सर्वमान्य बनना चाहता था तो दूसरा अछूतों की पीड़ा को स्वयं महसूस कर एकांगी सोच रूपी पूर्वाग्रह में डूबे थे, किन्तु महानता के तराजू पर किसी का भार कम या ज्यादा बताना मानवता तथा इतिहास को झूठलाता है।

थोड़ी सी वर्णव्यवस्थावादी होने के बावजूद महात्मा गाँधी इस क्षेत्र में भी अतुलनीय है। गोरक्ष पीठ के पीठाधीश्वर महन्त अवैद्यनाथ की वाणी से जो उन्होंने एक बार प्रबुद्ध चर्चा में व्यक्त की थी– ''हिन्दुओं को डॉ0 अम्बेडकर का शुक्रगुजार होना चाहिए, क्योंकि उन्होंने कोई और धर्म न स्वीकार कर बौद्ध धर्म अपनाकर हिन्दू बने रहे। अरे यदि हम अपने बच्चों से कड़ा रुख का व्यवहार करें या दुर्व्यवहार करें तो वो भी हमें छोड़ कर चल देगा तो हम दलित वर्ग से अब क्या उम्मीद करते हैं जो बराबर जलालत झेले हैं।''[13]

गाँधी जी और डॉ0 भीमराव को किसी विवाद में घसीटने से एक निरर्थक भ्रम पैदा होता है। एक ने दलितों की पीड़ा में अपनी पीड़ा देखी, दूसरे ने सब पीड़ा का विष पिया, किन्तु सहमति–असहमति की चिंता किये बगैर दोनों ने एक ही मंच पर काम किया। एक के प्रति राष्ट्र कृतज्ञ हुआ, उन्हें बापू कहा तो दूसरे का भी लोगों ने सम्मान दिया– विधिवेत्ता के रूप में, संविधानविद् के रूप में। एक सम्प्रदायवाद, अस्पृश्यता एवं साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ते रहे तो दूसरे सामाजिक न्याय की लड़ाई संवैधानिक तरीके से लड़ते रहे।

गाँधी जी और अम्बेडकर क्या एक–दूसरे के विरोधी थे अथवा पूरक? क्या बहस निरर्थक हो सकती है, किन्तु एक सार्थक तुलना की अपेक्षा जरूर रखती है। इस बात से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता है कि इनके मध्य विचारात्मक अन्तर्विरोध था। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि दोनों महापुरुषों ने जाति व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास किया परन्तु तरीके भिन्न थे। गाँधी जी व बाबा साहेब मात्र दो नाम नहीं अपितु एक ही कालखण्ड की दो ऐसी समान्तर विचारधाराएं थी, जो स्वाधीनता व स्वराज्य के विराट शिखर से निःसृत और विस्तार पाते अनेक उपसारिणीयों में विभाजित होती गयी।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. कीर, धनंजय : डॉ0 अम्बेडकर : लाइफ एण्ड मिशन्स, पापुलर प्रकाशन, बाम्बे, 1982, पृ0 206
2. प्रसाद डॉ0, उपेन्द्र : गाँधीवादी समाजवाद, नमन प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001, पृ0 17
3. अम्बेडकर, डॉ0 भीमराव : गाँधी जी का आमरण अनशन, अनुवादक– जगन्नाथ प्रसाद कुरील, पृ0 1–5
4. वही, पृ0 6
5. सिंह, राम गोपाल : डॉ0 अम्बेडकर का विचार दर्शन, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, मध्य प्रदेश, प्रथम संस्करण, 2002, पृ0 32
6. वही, पृ0 18
7. अम्बेडकर, डॉ0 भीमराव : गाँधी जी का आमरण अनशन, अनुवादक– जगन्नाथ प्रसाद कुरील, पृ0 16, 17
8. वही, पृ0 18
9. शाह, घनश्याम, पॉलिटिक्स ऑफ शिड्यूल्ड कास्ट एण्ड ट्राइब्स, बोरा एण्ड कम्पनी, बाम्बे, 1980, पृ0 133
10. वही, पृ0 134
11. सी0, पर्वताथामा : शिड्यूल्ड कॉस्ट्स एट द क्रास रोड, आशीष पब्लिशिंग हाउस, न्यू देलही, 1989, पृ0 132
12. पाण्डेय, एच0एल0 : गाँधी, नेहरु, टैगोर एवं अम्बेडकर, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2005, पृ0 108
13. वही, पृ0 109

●